एमा0पी0ए0एम0–101

संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र

द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

ध्वनि भेद

- संगीतोपयोगी ध्वनि
- नाद
- नाद की विशेषताएं
- काकु

ध्वनि

हमें जो कुछ भी सुनाई देता है वह ध्वनि कहलाती है। हमें नित्य कई प्रकार की ध्वनियां सुनाई देती हैं जिनमें से कुछ ध्वनियाँ कर्णप्रिय लगती है—जैसे पक्षियों की ध्वनि, संगीत वाद्यों की ध्वनि आदि। कुछ ध्वनियाँ हमें कर्णप्रिय नहीं लगती जैसे गाडियों की ध्वनि आदि।

संगीत केवल उस ध्वनि से संबंधित है जो कर्णप्रिय और मधुर है। निम्न चित्र से ध्वनि भेद को समझा जा सकता है।

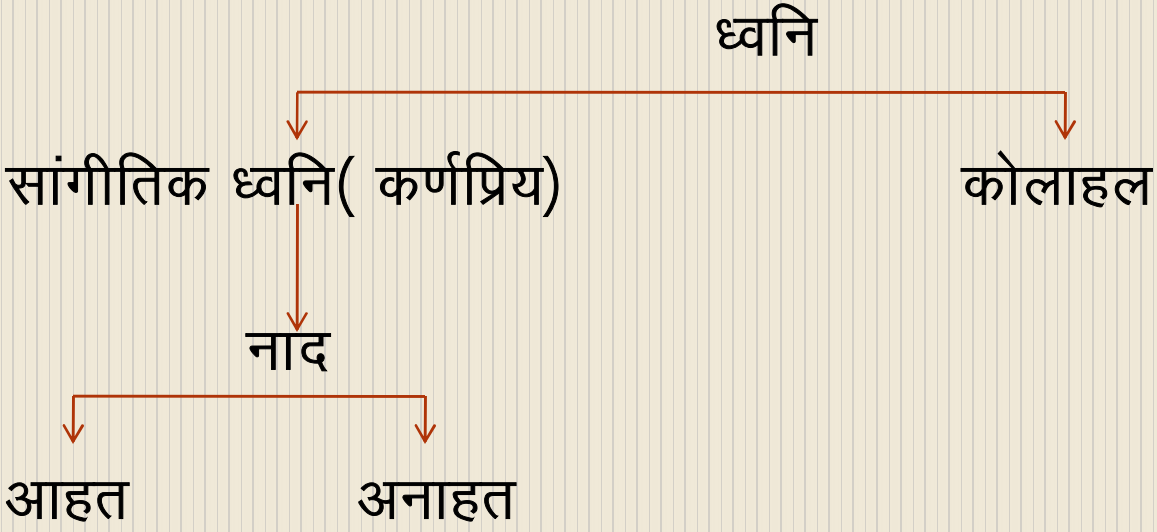

संगीतोपयोगी ध्वनि

वे ध्वनियाँ जो हमें कर्णप्रिय एवं मधुर लगती हैं, संगीतोपयोगी ध्वनि कहलाती हैं। किसी ध्वनि उत्पादक वस्तु के लगातार आवर्त कम्पनों से संगीतोपयोगी ध्वनि उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में नियमित और स्थिर आन्दोलन संख्या वाली ध्वनि सांगीतिक ध्वनि कहलाती है। जैसे संगीत वाद्य सितार, वायलिन, बाँसुरी आदि की ध्वनि। इन ध्वनियों का प्रयोग संगीत के क्षेत्र में किया जाता है इसलिए इन्हें संगीतोपयोगी ध्वनि कहते हैं।

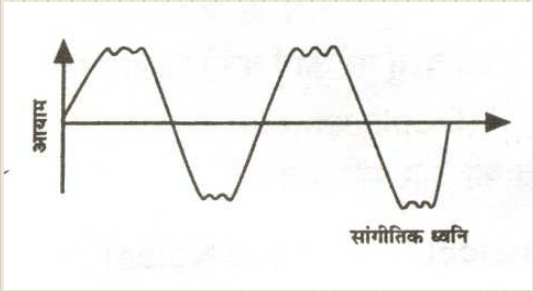

कोलाहल

कई ऐसी ध्वनियां हैं जो सुनने में कर्कश व अप्रिय लगती हैं जैसे दीवाली में प्रयोग किए जाने वाले पटाखे व बम इत्यादि की ध्वनि, गाडियों के तेज व अनियमित हॉर्न, ठोक–पीटने की आवाज, ऊँची व अनियमित आवाज उत्पन्न करने वाले विद्युत या इलेक्ट्रिक उपकरण इत्यादि। ऐसी ध्वनियां के आंदोलन/कंपन अनियमित और अस्थिर होते हैं इसलिए इसे कोलाहल कहा जाता है।

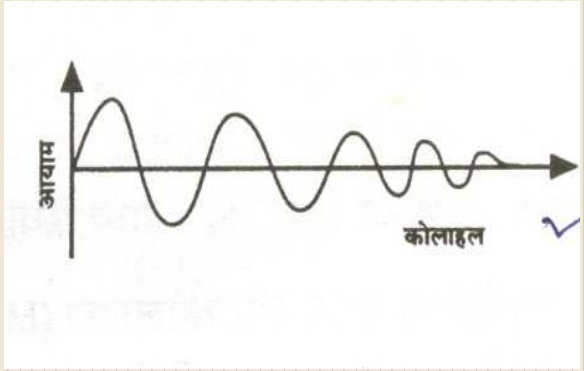

नाद

नियमित और स्थिर आन्दोलन संख्या वाली ध्वनि जो कर्णप्रिय हो उसे नाद कहा जाता है। दूसरे शब्दों में वे ध्वनियों जिनका प्रयोग संगीत में किया जाता है वे **नाद** कहलाती हैं। *संगीत रत्नाकर* ग्रंथ के अनुसारः–

चैतन्य सर्वभूतानां विवृत्तं जगदात्मना।

नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीय मुपास्महे।।

अर्थात नाद एक प्रकार की ध्वनि है जो सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। नाद सभी प्राणियों में स्थित है इसी कारण इसे ब्रह्म नाद कहते हैं।

एक अन्य परिभाषा के अनुसार – नाद नियमित कम्पनों का समूह है। सुनने के बाद भले ही अखण्ड और अटूट प्रतीत होता हो, परन्तु यथार्थ में वह ध्वनि तरंगों का समूह है।

योगशिखोपनिषद के अनुसारः–

नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।

नानुसन्धेः परा पूजा न हि तृप्ते परं सुखम्।। योगशिखोपनिषद 2.20

अर्थात – नाद से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है, अपनी आत्मा से बड़ा कोई देवता नहीं है, नाद अनुसन्धान से बड़ी कोई पूजा नहीं है तथा तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं है।

नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात पदाद्वचः।

वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।। संगीत रत्नाकर 1.2.2

अर्थात् – नाद से वर्ण की, वर्ण से पद की और पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है। वाणी से ही यह सब व्यवहार चलता है। अतः यह कहा जाता है कि सम्पूर्ण जगत नाद के अधीन है।

नाद की व्युत्पत्ति – 'नद' धातु से नाद शब्द की व्युत्पत्ति मानी गई है जिसका अर्थ होता है अव्यक्त ध्वनि। विद्वान मानते हैं कि नाद की उत्पत्ति प्राण तथा अग्नि के संयोग से होती है। जैसे –

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।

जातःप्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।। *संगीत रत्नाकर 1.3.6*

अर्थात – नकार प्राण वाचक तथा दकार अग्नि वाचक है, अतः जो वायु और अग्नि के योग से उत्पन्न होता है उसी को नाद कहते हैं।

संगीत मकरन्द में शरीर में नाद की उत्पत्ति कैसे होती है इस विषय में वर्णित है–सर्वप्रथम आत्मा मन को प्रेरित करती है, तत्पश्चात मन देह में स्थित अग्नि को प्रेरित करता है और फिर अग्नि वायु को प्रेरित करती है। इस प्रकार ग्रन्थि स्थित नाद, क्रम से ऊपर की तरफ चलता है और नाभि, हृदय, कंठ, तथा मूर्धा में ध्वनि को धारण करता है।

प्रायोगिक अवस्था में यह तीन प्रकार की मानी गई है – हृदय में स्थित मन्द्र, कंठ में स्थित मध्य तथा मूर्धा में स्थित 'तार' होती है।

नाद के दो भेद माने गए हैं – अनाहत एवं आहत। संगीत रत्नाकर के अनुसारः

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते।

सोऽय प्रकाशते पिंडे तस्तात्पिंडोऽभिधीयते।। *संगीत रत्नाकर 1.2.3*

अर्थात नाद के दो भेद हैं – अनाहत और आहत। ये दोनों पिंड(देह) में प्रकट होते हैं, इसलिए पिंड का वर्णन किया जाता है।

पं0 विष्णु नारायण भातखण्ड़े द्वारा रचित पुस्तक 'क्रमिक पुस्तक मालिका' भाग दो में वर्णित है :–

आहत–अनहत भेद नाद के

प्रथम भेद श्रुतियन सो होवे

अनहत मुनि जन ध्यान धरत जब।

अनाहत नाद

वह नाद जो बिना किसी आघात के स्वयं उत्पन्न हो उसे अनाहत नाद कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप मनुष्य के शरीर में दोनों कान बन्द करने पर भी जो ध्वनि सुनाई देती है वह अनाहत नाद है। महर्षि/मुनि/योगी लोग जिसकी उपासना, ध्यान या समाधि लगाकर करते हैं और जिसके फलस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति करते हैं वह अनाहत नाद है।

विद्वान नाद को सृष्टि के पॉच तत्वों – आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु में से आकाश का गुण मानते हैं। अनाहत नाद श्रवणेद्रियों से नहीं सुनाई देता। योगी इसकी साधना करते हैं क्योंकि यह मोक्ष प्रदान करने वाला है। किन्तु यह रंजक नहीं होता अतः यह नाद संगीतोपयोगी नहीं होता।

आहत नाद

वह नाद जो किसी वस्तु पर घर्षण/आघात से उत्पन्न हो उसे आहत नाद कहते हैं। इसी नाद का प्रयोग संगीत में किया जाता है। उदाहरणस्वरूप वीणा, सितार आदि वाद्यों में मिजराब से आघात करने पर उत्पन्न नाद, सांरगी या वायलिन में गज के घर्षण से उत्पन्न नाद, आहत नाद कहलाता है। विद्वानों ने अनाहत नाद को मुक्तिदाता माना है। भारतीय संगीत में आहत नाद से ही श्रुति, स्वर आदि की उत्पत्ति मानी गई है।

दामोदर पंडित ने संगीत दर्पण में आहत नाद के विषय में उल्लेख किया है :–

स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भवभंजकः।

श्रुत्यादि द्वारतस्तस्मात्तदुत्पत्तिनिरुप्यते।।

अर्थात आहत नाद व्यवहार में श्रुति इत्यादि(स्वर, ग्राम, मूर्च्छना) से रंजक बनकर भव–भंजक भी बन जाता है, इस कारण इसकी उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ।

नाद की विशेषताएं

विद्वानों ने नाद की तीन विशेषताएं अथवा गुण–धर्म बताए हैं :–

1) तारता अथवा नाद का ऊँचा–नीचापन(Pitch)

2) तीव्रता अथवा नाद का छोटा–बड़ापन(Loudness or Magnitude)

3) जाति या गुण(Timbre)

तारता अथवा नाद का ऊँचा–नीचापन(Pitch)

तारता का अर्थ है कि अमुक ध्वनि कितनी ऊँची अथवा नीची है। नाद की इसी ऊँची–नीची स्थिति को 'तारता' (Pitch) भी कहते हैं। नाद के इसी गुण के आधार पर नाद के विभिन्न रूप जैसे षडज, ऋषभ, धैवत आदि बनते हैं। नाद की तारता आंदोलन पर निर्भर करती है। एक सेकेण्ड में ध्वनि कम्पनों की उत्पन्न होने वाली संख्या को *आन्दोलन* कहते हैं।

यदि आन्दोलन संख्या एक निश्चित समय में कम हो तो नाद नीचा और अधिक हो तो नाद उंचा कहलाता है। ध्वनि तरंग के परिप्रेक्ष्य में किसी ध्वनि तरंग की लम्बाई बढ़ने पर नाद नीचा तथा कम होने पर नाद ऊँचा होता है।

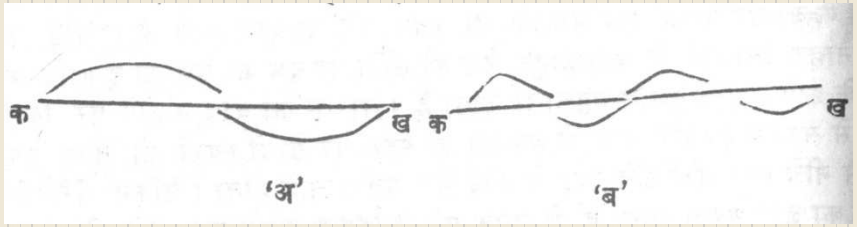

ऊपर अ और ब दो चित्र दिए हैं। दोनों में क–ख रेखा बराबर है किन्तु अ चित्र में केवल एक सम्पूर्ण तरंग है, जबकि ब चित्र में उतनी ही दूरी में दो तरंगे हैं। इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि जितनी देर में अ चित्र की एक तरंग उत्पन्न होती है, उतनी ही देर में ब चित्र की दो तरंगे उत्पन्न होती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो ब चित्र की कम्पन संख्या अ चित्र की कम्पन संख्या से दुगुनी है।

पुरूषों की आवाज गंभीर होती है क्योंकि पुरूषों की आवाज की कम्पन संख्या अपेक्षाकृत कम होती है जबकि स्त्रियों की की आवाज बारीक और टीप वाली होती है क्योंकि स्त्रियों की आवाज की कम्पन संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है।

प्रत्येक नाद(श्रुति, स्वर) एक दूसरे से ऊँचा या नीचा होता है। जैसे 'सा' से 'रे' स्वर ऊँचा है तथा 'प' से 'म' स्वर नीचा है। इसका अर्थ यह है कि 'रे' स्वर की आन्दोलन संख्या 'सा' स्वर से अधिक होती है और वह ऊँचा होता है। इसके विपरीत सा स्वर रे से इसलिए नीचा होता है क्योंकि 'सा' की आन्दोलन संख्या 'रे' से कम होती है। इस प्रकार जैसे–जैसे हम सा से तार सां तक जायेंगे तो हर स्वर ऊँचा होता चला जाता है और तार सा से अवरोह में आते समय वह स्वर नीचा होता जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक सप्तक में आरोही क्रम में स्वर ऊँचे होते चले जाते हैं और अवरोही कम में नीचे होते जाते हैं। इसे ही *नाद का ऊँचा व नीचापन या तारता कहते* हैं।

तीव्रता अथवा नाद का छोटा–बड़ापन (Loudness or Magnitude)

किसी ध्वनि क्षेत्र में ध्वनि की माप या मात्रा को ध्वनि की तीव्रता कहते हैं। किसी ध्वनि स्त्रोत के चारों ओर का वह क्षेत्र ध्वनि क्षेत्र कहलाता है जिसमें ध्वनि का प्रभाव अनुभव किया जाता है।

नाद की तीव्रता इस बात पर निर्भर करती है कि आघात की शक्ति कितनी है। आघात जितना जोरदार होगा नाद उतना ही बड़ा और दूर तक सुनायी देगा। इसी प्रकार आघात जितना हल्का या क्षीण होगा नाद उतना ही छोटा, कम दूरी तक सुनायी देगा। एक बात ध्यान देने योग्य है कि नाद तीव्रता कम्प–विस्तार पर निर्भर करता है। कम्पन का समय अधिक होने पर आवाज तीव्र या बड़ी होगी और कम्पन का समय कम होने पर आवाज सूक्ष्म या छोटी होगी।

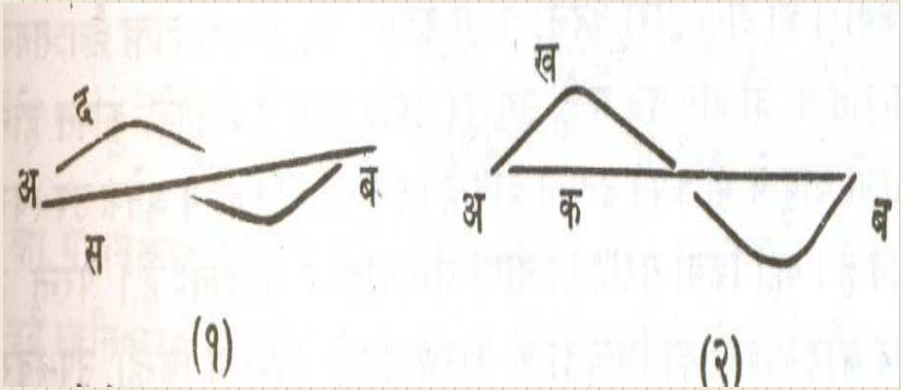

उक्त चित्रों में अ–ब रेखाएँ बराबर है। परन्तु चित्र 1 में स–द तरंग की चौडाई, चित्र 2 की क–ख तरंग की चौडाई से कम है। उक्त दोनों चित्रों में दर्शाई हुई ध्वनियॉ नाद के उॅचे–नीचेपन में समान होंगी क्योंकि तरंग की लम्बाई अ–ब समान है। परन्तु चित्र 1 की ध्वनि पास तक ही सुनाई देगी और चित्र 2 की ध्वनि दूर तक।

नाद की जाति अथवा गुण (Timbre)

नाद की जाति को इसका तीसरा गुण कहते हैं। दो समान कम्पन्न आवृति वाली ध्वनियों में जो हल्का सा अन्तर सुनाई दे उसे ही नाद की जाति या गुण कहते हैं। उदाहरणस्वरूप किन्हीं दो संगीत वाद्ययंत्रों को समान कम्पन आवृति में मिलाने व नाद उत्पन्न करने पर जो अन्तर महसूस हो उसे नाद की जाति या गुण है। इसी कारण से विभिन्न संगीत वाद्यों की आवाज एक दूसरे से भिन्न–भिन्न पहचानी जा सकती है।

दो भिन्न ध्वनि स्त्रोतों से उत्पन्न ध्वनि में मूलस्वर के साथ–साथ जो अन्य ध्वनियां सुनाई देती है उन्हें संनाद स्वर (Harmonics) होते हैं। ऐसा माना जाता है कि इन संनादी स्वरों से मधुरता बढ जाती है। नाद का माधुर्य उसकी जाति ही है।

काकु

काकु शब्द संस्कृत के कक् धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है ध्वनि का लचीलापन। भिन्न–भिन्न ध्वनि स्रोतों जैसे कंठ आदि से निकलने वाली ध्वनि में भिन्नता होती है और ध्वनि की इसी भिन्नता को 'काकु' कहते हैं।

- सर्वप्रथम भरत कृत नाट्यशास्त्र के 17वें अध्याय में काकु पर चर्चा का वर्णन प्राप्त होता है। भरत ने काकु के छः अंग–*विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुबन्ध, दीपन, एवं प्रशमन* बतलाए हैं, जिनका संगीत में रस उत्पत्ति में विशेष महत्व माना गया है।
- अमरकोष में वर्णित है–ध्वनि का वह विकार जिसके द्वारा किसी भाव की अभिव्यक्ति हो उसे काकु कहते हैं।
- पं0 ओंकारनाथ ठाकुर ने संगीतांजलि में काकु का वर्णन करते हुए लिखा है–स्वरों के भावपूर्ण उच्चारण काकु कहलाता है।

ऐसा माना जाता है कि ध्वनि में मनोभावों को अभिव्यक्त करने की अदभुत शक्ति निहित है। विभिन्न प्रकार के भाव जैसे शोक, भय, प्रसन्ता, प्रेम आदि को अभिव्यक्त करने के कारण ध्वनि या आवाज में जो भिन्नता आती है उसे 'काकु' कहते है।

- मानव के साथ–साथ पशुओं में भी काकु प्रयोग सुनने को मिलता है। उदाहरणस्वरूप – भूखी बिल्ली की आवाज भिन्न प्रकार की होती है और जब वही बिल्ली अपने बच्चे को किसी के द्वारा छेड़ते समय विरोध प्रकट करती है तब उसकी ध्वनि भिन्न होती है। ध्वनि की यही भिन्नता ही 'काकु' है।
- नाटक में किसी पात्र द्वारा कोई विशेष भाव को व्यक्त करने के लिए काकु अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है। ऐसा कहा जाता है कि जो पात्र या अभिनेता काकु का प्रयोग जितनी कुशलता से कर सकें वह अपने अभिनय का उतनी ही सफलता पूर्वक निर्वहन कर सकेगा।

अगर स्वर सीधे–सीधे गाए या बजाए तो वह उतना प्रभावित नहीं करेंगे। इसके लिए आवाज को जोर से/मध्यम से कम्पन, आवाज को बढ़ाना/घटाना आदि अलंकारों की आवश्यकता होती है। स्वरों की भिन्न–भिन्न ध्वनि को ही काकु भेद कहते हैं। भाव प्रदर्शित करने के लिए काकु का प्रयोग भी किया जाता है।

संगीत–रत्नाकर में छः प्रकार के काकु का वर्णन किया गया है :–

- **स्वर काकु** – स्वर काकु का अर्थ स्वरों के विशेष लगाव से है। जब एक स्वर की छाया दूसरे स्वर में श्रुति को कुछ अधिक या कम करने से दिखाई देती है तो उसे *स्वर काकु* कहते हैं।

  श्रुतिन्यूनाधिकत्वेन या स्वरान्तरसंश्रया

  स्वरान्तरस्य रागे स्यात् स्वर काकु रसौ मताः।संगीत रत्नाकर, पृ0 175

- **राग काकु** – राग की जो अपनी मुख्य छाया होती है, उसे *'राग–काकु'* कहते हैं। राग के नियमानुसार राग काकु, ऐसे स्वर समूह की रचना करते हैं जो उस राग का विशेष रुप प्रकट करें। इस कारण इसे राग की पकड़ भी कहा जाता है। पं0 शारंगदेव के अनुसार :–

  या रागस्य निजच्छाया राग काकुं तु तां विदुः।

- **अन्यराग काकु** – जब किसी राग की विशेष छाया किसी अन्य राग में दिखे तो उसे *'अन्यराग–काकु'* कहते है। जैसे – जोंगकौंस, कान्हडा, श्याम कल्याण, बहार आदि। कुछ राग मिश्र नहीं होते हैं किन्तु फिर भी उनमें किसी अन्य राग की छाया दिखती है, जैसे–मियॉ मल्हार में कान्हडा, कान्हडा में सारंग आदि।

- **देश काकु** – जो राग अपने देश और स्वभाव से अपने में सम्मिलित रहता है और किसी अन्य राग का सहारा नहीं लेता, उसे *देश काकु* कहते हैं। पं0 शारंगदेव देश काकु के विषय में लिखते हैं:–

सां देश काकुर्या रागे भवेहेशस्वभावतः।

अर्थात किसी देश अथवा राज्य, स्थान विशेष से जिसका प्रभाव राग पर पड़े तो उसे देश काकु कहते हैं। यह दो प्रकार का माना गया है–1. किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित जो वहॉ की संस्कृति और समाज से प्रभावित हो तथा 2. किसी प्रदेश विशेष से सम्बन्धित। जैसे मांड़, पहाडी, भटियाली आदि।

- **क्षेत्र काकु** – क्षेत्र का अर्थ शरीर से है, अतः अलग–अलग शरीर के प्रति जो काकु राग में विभिन्न रूप धारण करें उसे *'क्षेत्र–काकु'* कहते हैं। इसे कंठ के गुण से सम्बन्धित माना जाता है। प्रत्येक संगीतकार का राग प्रस्तुतिकरण का तरीका अपनी आवाज के गुण के कारण भिन्न होता है। पं0 शारंगदेव ने अनुसार ध्वनि का विशेष गुण ही क्षेत्र काकु है।

- **यंत्र काकु** – विभिन्न वाद्य–यंत्रों से उत्पन्न ध्वनि की भिन्नत अर्थात काकु को ही *यंत्र काकु* कहते हैं। जैसे वीणा, सितार, सरोद आदि की ध्वनि भिन्नता। इस यंत्र काकु के आधार पर हम बिना देखे ही केवल वाद्य यंत्र की ध्वनि सुनने से पहचान लेते है कि वह कौन सा वाद्य है। यंत्र काकु के कारण वाद्यों के द्वारा उत्पन्न प्रभाव में भी अन्तर आ जाता है। जैसे वीणा एवं सितार द्वारा राग दरबारी के प्रस्तुतिकरण का प्रभाव भिन्न–भिन्न होगा।

  अतः स्वरों को भावपूर्ण बनाकर रसानुभूति के लिए काकु का प्रयोग महत्वपूर्ण माना जाता है।

पाश्चात्य संगीत में काकु

पाश्चातय संगीत में काकु का अत्यधिक प्रयोग देखने को मिलता है। यह भी माना जाता है कि पाश्चात्य संगीत का आधार काकु है। पाश्चात्य संगीत में काकु के दो प्रकार माने जाते हैं –

- इन्टोनेशन(Intonation) – स्वरों का प्रयोग व ध्वनि का उतार–चढ़ाव इन्टोनेशन कहलाता है।
- इनफलेक्शन(Inflection) – इसे काकु के समान माना जाता है एवं इसमें आवाज की तीव्रता व मंद्रता गुण आते हैं।

धन्यवाद